INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

# वर्तमान समयानुसार संगीत पाठ्यक्रमों में बदलाव की आवश्यकता

**श्रीमति स्वप्ना मराठे**
सहायक प्राध्यापक संगीत
शा.क.रा.कन्या स्ना.स्व. महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

युग परिवर्तन सृष्टि का सम्बन्धित नियम है, जिसके अन्तर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक वातावरण भी बदलते रहते हैं। अतः युगानुकूल संगीत शिक्षा की पद्धति में भी परिवर्तन होना आश्चर्यजनक घटना नहीं है। भारतीय संस्कृति विश्व की उन संस्कृतियों में से एक है जिसने सम्पूर्ण विश्व को नई दिशा एवं सृजनात्मकता दी। ये वो धरोहर है जिसको सुरक्षित रखने के लिये हमारे संस्कृति प्रेमियों ने अपने सम्पूर्ण जीवन की आहूति दी। संगीत मानव समाज की एक कलात्मक उपलब्धि है। यह लयकारी सांस्कृतिक परम्पराओं का एक मूर्तिमान प्रतीक है और भावना की उत्कृष्ट कृति है। अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप देने का माध्यम ही संगीत है एवं मूर्ति रूप होने के कारण संगीत लोक रुचि के अनुरूप जन–जन में सर्वत्र विद्यमान है।

भारतीय संगीत को पहले गुरू के द्वारा सुनने के बाद ही सिखाये जाने की परम्परा थी यानी गुरू शिष्य परम्परा के अंतर्गत ही संगीत कला हस्तान्तरित होती आई है। यह परम्परा इतनी अनुशासित सुदृढ़ एवं योजनाबद्ध थी कि जिसके कारण उस समय छपाई, रिकार्डिंग आदि आधुनिक साधन न होते हुये भी वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ग्रहण करते हुये वर्तमान स्वरूप तक जा पहुँची है। इतिहास साक्षी है कि सामाजिक एवं राजनीतिक, परिस्थितियों का कला पर बहुत प्रभाव पड़ता है। कला आश्रय चाहती है फलने–फूलने के लिये उसे स्वस्थ वातावरण एवं आश्रय की आवश्यकता होती है। संगीत शिक्षण पद्धति के संबंध मे अधिकतर स्थानों पर व्यक्तिगत शिक्षण पद्धति, जिसे गुरू शिष्य परम्परा कहा जाता है का ही उल्लेख मिलता है। प्राचीनकाल में संगीत के क्रियात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया जाता था। बौद्धिक विवेचन की आवश्यकता को उन्होंने महत्व नहीं दिया परन्तु क्रियात्मक पक्ष के कायदे, मूल सिद्धान्तों का उन्होंने उल्लंघन नहीं किया। मध्यकाल में ही संगीत शिक्षा का स्वरूप क्या रहा इसका अनुमान जहाँ तहाँ बिखरे हुए सांगीतिक उल्लेख जो मिले हैं उससे सिद्ध हुआ है कि उस समय भी सभी को राजाश्रय प्राप्त था एवं शिक्षण पद्धति गुरू शिष्य परम्परा के अन्तर्गत थी।

18वीं शताब्दी का अन्त तथा 20 वीं शताब्दी का प्रारम्भ भारतीय संगीत के पुनरुत्थान का काल माना जाता है। वर्तमान समय में संगीत के संस्थागत सामूहिक शिक्षण की व्यवस्था पाश्चात्य शिक्षा पद्धति की ही देन है। शिक्षा का उद्देश्य बालक को इतिहास, भूगोल, व्याकरण, गणित आदि विषयों का ज्ञान कराना मात्र नहीं वरन् बालक की रुचियों और उसकी जन्मजात शक्तियों का सम्यक विकास करना है। संगीत के पुनरुत्थान की दृष्टि से पं. विश्णुनारायण भातखंडे एवं पं.विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ये दो ऐसे महान संगीतज्ञ हुये जिन्होंने संगीत को जन साधारण में विकसित एवं प्रचारित कर दिया। संगीत की विद्यालयीन शिक्षण पद्धति के दोनों संस्थापक थे। दोनों ने अपनी स्वरलिपि पद्धति में अनेक ग्रंथों का निर्माण किया। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि आज सम्पूर्ण उत्तर भारत में हम जिस शास्त्रीय संगीत का व्यवहार कर रहे हैं उसके वर्तमान स्वरूप का प्रारूप उन्हीं के द्वारा निर्धारित किया गया है। उन्होंने ही संगीत को घरानों के बंधन से मुक्त कर उसे विद्यालयों में स्थान देकर सर्व सुलभ बनाया। यद्यपि संस्थाओं के अंतर्गत संगीत के शिक्षण की शुरूआत सन् 1880 के लगभग जामनगर में पं. आदित्यराम, बड़ौदा में श्री मौलाबक्श और कलकत्ता में श्री सुरेन्द्र मोहन टैगोर के सत्प्रयासों के फलस्वरूप हो चुकी थी। परन्तु संगीत की संस्थागत शिक्षा के युग का वास्तविक सूत्रपात पं. विष्णु द्वय द्वारा ही हुआ है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में संगीत की व्यापक प्रगति हुई तथा संगीत के शास्त्रीय एवं व्यवहारिक दोनों पक्षों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के द्वार खुले। विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में संगीत को समुचित महत्व तथा स्थान मिला एवं संगीत को केवल एक ललित कला ही नहीं अपितु विषय के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। वर्तमान में अन्य विषयों की भाँति संगीत का भी सामूहिक शिक्षण दिया जा रहा है। सामूहिक शिक्षण की क्रमबद्धता में शिक्षण विधियों का अपना महत्व है। इन विधियों के द्वारा विद्यार्थी के सीखे हुये नये तथा पुराने ज्ञान–अनुभवों एवं क्रियाओं को व्यवस्थित किया जाता है। शिक्षक एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करता है जिससे विद्यार्थी लाभान्वित हो सकें। विद्यालयीन संगीत को भिन्न–भिन्न शिक्षण विधियों द्वारा सफल बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं। सामूहिक शिक्षण बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप ही हो रहा है। संगीत शिक्षणके दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं– सैद्धांतिक पक्ष एवं क्रियात्मक पक्ष। कुछ ऐसी विधियाँ है जो केवल संगीत के सैद्धांतिक पक्ष के शिक्षण में खरी उतरी हैं एवं कुछ क्रियातमक पक्ष के शिक्षण में। कुछ ऐसी विधियाँ भी है जो संगीत के दोनों ही पक्षों के शिक्षण में प्रयोग में लायी जाती हैं उनमें से हैं :–

 ISSN- 2350-0530(O) 2394-3629(P)

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

**1. भाषण विधि** – इसमें शिक्षक किसी विषय पर विद्यार्थियों के समक्ष बोलता है विद्यार्थी उसे अपनी सूझबूझ से ध्यान में लेते है।
**2. गवेषणात्मक विधि** – इसके द्वारा विद्यार्थी की आंतरिक प्रतिभा को उभारने एवं उसे स्वयं खोजने की दिशा में प्रेरित किया जाता है।
**3. प्रदर्शन अनुकरण विधि** – कलात्मक परिपक्वता के दृष्टिकोण से यह अत्यन्त ही महत्वपूर्ण विधि है।
**4. भाषण एवं प्रदर्शन विधि** – संगीत के दोनों पक्षों के शिक्षण के लिये यह विधि अत्यन्त उपयुक्त एवं एक दूसरे के पूरक है।
**5. परिसंवाद तथा संगीत गोष्ठियों द्वारा संगीत शिक्षण–** संगीत शिक्षण के क्षेत्र को विस्तृत करने तथा विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिये परिसंवादों और गोष्ठियों का अपना महत्व है। इसके अतिरिक्त परियोजना विधि एवं कार्यशाला विधि को भी प्रयोग में लाया जा रहा है।
**6. शोध कार्य के रूप में** – किसी निर्धारित ाय के संदर्भ में शोध का सर्वमान्य लक्ष्य उस विषय को आगे बढ़ाना अर्थात् शोध द्वारा नये तथ्यों का उद्घाटन अथवा अज्ञात व अल्पज्ञात तथ्यों की नवीन धारणा होती है।

वर्तमान समय में संगीत के क्षेत्र में उच्च शिक्षा का सबसे नकारात्मक बिन्दु यह है कि यह रोजगार परक नहीं है एवं पाठ्यक्रमों में नवीन बदलाव की आवश्यकता पर अधिक ध्यान देना जरूरी है। उच्च शिक्षा प्राप्त अधिकांश विद्यार्थियों के पास संगीत शिक्षणके अतिरिक्त और कोई मार्ग भी नहीं है वरन् अन्य तथ्य भी महत्वपूर्ण होते हैं वे दृश्टिगोचर नहीं होते। इसका प्रमुख कारण शिक्षण प्रणाली में कल्पना शक्ति रचनात्मक क्षमता व मौलिकता का विकास नहीं किया जाता। शिक्षा का स्तर पाठ्यक्रम में निहित रागों की संख्या या विषय सामग्री की बहुलता से नहीं आंका जाना चाहिये। अध्ययन व्यापक व वृहत न होकर गहन व तथ्यपरक है तो संभवतः इस समस्या का हल निकालने में काफी हद तक मदद मिलेगी।

आज संगीत का अर्थ केवल गाना बजाना ही नहीं रह गया है। संगीत के अन्य पक्षों में भी काफी संभावनायें हैं जिनका उच्च स्तर पर प्रशिक्षण देकर विद्यार्थियों को उनमें निपुण बनाया जा सकता है जैसे संगीत संबंधी लेखन में पर्याप्त अवसर उपलब्ध हैं। उच्च स्तर के ऐसे पाठ्यक्रमों के प्रारूप बनाये जाना चाहिये जो विद्यार्थियों में लेखन क्षमता, विश्लेशणात्मक दृष्टिकोण तथा रचनात्मकता का विकास करने में सहायक हो। सांगीतिक शोध के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये छात्रों को प्रेरित करने हेतु विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम निर्धारित होने चाहिये। वर्तमान युग विज्ञान का युग है। संगीत का भी वैज्ञानिक पक्ष है जो उच्च शिक्षा के क्षेत्र में काफी संभावनायें पैदा करता है। संगीत के स्वरों में निहित ऊर्जा मनुष्य, जीव जन्तुओं व वनस्पतियों को कैसे व कितना प्रभावित करती है। सांगीतक स्वरों द्वारा किस प्रकार विभिन्न रोगों का उपचार संभव है स्वरोपचार द्वारा किसी प्रकार तनाव, थकान, निराशा, कुण्ठा व अनिद्रा जैसे मानसिक रोगों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। ये सब विषय स्वयं में अध्ययन की अनंत संभावनाओं को समेटे हैं जिनको संगीत की उच्च शिक्षा का अंग बनाया जाना चाहिये। विभिन्न धर्मो, संप्रदायों व धार्मिक संस्थाओं के विकास में संगीत की भूमिका व महत्व पर भी वृहत अध्ययन संभव है। हमारे देश की सांस्कृतिक परम्परा भी अत्यन्त समृद्ध है। प्रदेशों के अलावा क्षेत्रों में भी अलग–अलग प्रकार का संगीत प्रचलित है। विभिन्न प्रदेशों में लोकगीतों, वाद्यों तथा नृत्यों आदि का अध्ययन इतना विशाल क्षेत्र है कि यह एक पृथक व स्वतंत्र विषय के रूप में भी मान्यता प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों के लोग संगीत का अध्ययन करने पर हमें उन स्थानों के जन जीवन, आचार–विचार और रीति–रिवाजों को समझने का भी अवसर प्राप्त होगा जो राष्ट्रीय एकता की वृद्धि में भी सहायक सिद्ध होगा। इस प्रकार उच्च शिक्षा की दृष्टि से लोक संगीत के अध्ययन में अनेक संभावनाएं हैं जो पाठ्यक्रमों में बदलाव की आवश्यकता को प्रकट करते है। वर्तमान युग में कम्प्यूटर का आधिपत्य देखते हुए संगीत को कम्प्यूटर से जोड़ा जाना विषय के लिये अधिक सिद्ध होगा। कम्पयूटर में संगीत संबंधी विषयों के आकर्शक सी.डी. पैकेज को विकसित करना, सांगीतिक संस्थाओं व कलाकारों के व्यापारिक हितों की सिद्धि के लिये वेब पेज की डिजाइनिंग करना, साउण्ड अथवा रिकॉर्डिंग इंजीनियरिंग के क्षेत्र का परिचय भी संगीत के विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम द्वारा दिया जाना चाहिये।

वर्तमान समय में पाठ्यक्रमों में बदलाव की अत्यंत आवश्यकता प्रतीत होती है इसका कारण व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा सर्वत्रत ज्यादा एवं समय के परिवर्तन को देखते हुए पाठ्यक्रमों में भी परिवर्तन आवश्यक है। पाठ्यक्रम को अधिक सुसंगत और क्रमबद्ध बनाने के लिये सभी स्तरों पर प्रयास किये जाने जरूरी है। अभ्यास वस्तु कम एवं प्रायोगिक पक्ष अधिक प्रबल होना चाहिये। अलग–अलग पाठ्यक्रमों का निर्माण हो जिससे छात्र अपनी इच्छा एवं योग्यता के अनुसार अपनी दिशा निर्धारित कर सके। संगीत कला वस्तुतः प्रदर्शन की कला है उसे अभिव्यक्त करना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। इसलिये अभिव्यक्ति हेतु विशेष अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक है। गुणवत्ता को ध्यान में रखकर यदि पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाता है तो इससे उज्जवल भविश्य के प्रति आशा जागृत होती है।